

# आलोचकों की कमी से कला जगत को हुआ नुकसान: अखिलेश

कुछ लोगों का मानना है कि आपका अमूर्तन कुछ-कुछ टेक्स्टाइल डिजाइन जैसा लगता है। आपकी कला पर इस उल्लोचन का कोई प्रभाव है?

लोग ठीक ही मानते हैं। वे अनजाने में चित्रकला के उस तत्व को पहचान पा रहे हैं जो सबसे जरूरी है। हर चित्र एक बेहतरीन अलंकरण का नमूना है।

भारतीय परिदृश्य में यह प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि आजादी के बाद चित्रकला ने अपना अंतरराष्ट्रीय मुकाम बनाया किन्तु आजान हिन्दुस्तान अभी भी कला आलोचन के इंतेजार में है। हमें जरूरत है एक अन्तर्दृष्टि रखने वाले आलोचक की जो आजादी के 67 साल बाद भी संभव नहीं हो पाया है। भारतीय मनस धैर्य का धुनि है। अतः उसे अलंकरण की नहीं है। पश्चिम में इस तरह के कई प्रयोग हुए। अतः चित्र के अलंकरण भाग पर कुछ कहना मुश्किल जरूरी लगता है। मेरे संदर्भ में ही नहीं, चित्रकला के संदर्भ में भी यह एक महत्वपूर्ण तत्व है जिसका इस्तेमाल जाने-अनजाने सभी कलाकार करते रहे हैं। लिओनार्डो वा विन्ची से लेकर रफीक शाह तक।

अमूर्तन का संगीत और तब रशिन से गहरा संबंध रहा है। वास्तव में इसे दृश्य संगीत ही कहा गया है। आप इसे किस रूप में देखते हैं?

अमूर्तन का संबंध सिर्फ संगीत और तब रशिन से जोड़ना ठीक नहीं होगा। दरअसल अमूर्तन ही इस जगत का रूप है। यह जगजगज जिसे किसी भी भाषा या विचार में व्यक्त किया जाये तब भी वह अमूर्त ही रह जाता है। यह हम सब जानते हैं कि इस अमूर्त संसार का एक छोटा सा अंश चित्रकला भी है और चित्रकला में सभी मूर्त हैं। जो पूरी तरह अमूर्त है, उसका सिर्फ एक उदाहरण 'मोनालिसा' है। इस चित्र के अमूर्तन को बनां करने के लिए अनेक ग्रंथ लिखे

अखिलेश का भारतीय कला परंपरा से गहरा जुड़ाव रहा है। बपान के दिनों में ही पिता से उन्होंने यह हुनर सीखा था जो स्वयं कला प्राध्यापक थे। कई महान कलाकारों के करीब रहकर उन्होंने अपनी कला को संवारा है। कम समय में ही समकालीन कला में अपने अमूर्तन से अखिलेश ने अलग पहचान बनाई है। आज वह नेपाल के नए कलाकारों के लिए प्रेरणास्रोत हैं। यही नहीं, नेपाल में कलाकारों के अमूर्तन का नया स्कूल सामने लाने में भी उनकी भूमिका महत्वपूर्ण कही जा सकती है। यहां प्रस्तुत है अखिलेश से राजेश शुक्ला की बातचीत।

जा चुके हैं फिर भी उसका अमूर्तन अव्यक्त है। चित्रकला 'वाष्पक' माध्यम है जिसे शब्दों में व्यक्त करने की जगह आंखों में भरने की जरूरत होती है। उसे सिर्फ देखकर समझा जा सकता है, शब्दों में नहीं, दृश्य में। चित्रकला का गहरा संबंध दृष्टि से है। शायद यह बात किसी तरह दर्शक तक पहुंचे। हमारे यहां शरीर चित्रण विषय ही नहीं रहा। न ही जगत के चित्रण का वचा किया गया। धर्म प्रचार के लिए भी चित्रकला की माध्यम नहीं रहा।

नित्य-

कर्म,

भैमिंतिक-

कर्म और

काय-कर्म,

इन तीन कर्मों

में से चित्रकला

'काय-कर्म'

का अंग रही है

जिसका कोई

प्रयोजन नहीं

है, वह सिर्फ

करने योग्य

काम है। इन

सभी कर्मों में से सबसे ज्यादा महत्व इसी काय-कर्म को दिया जाता है जिसका कोई प्रयोजन नहीं है।

अब इसे पश्चिमी विचार मूखला में नहीं देख सकते जिसमें विविधता में एकता देखने, दूढ़ने का फैसला



इन दिनों बहुत चल गया है। हमारे संदर्भ में ये सब एक ही तत्व का प्रकटन हैं। उसे संगीत या तत्व दर्शन से जोड़ने की कोशिश पश्चिमी विचारकों की वैचारिक अक्षमता की तरह ही मैं देख पाऊंगा। दरअसल, ये सब अमूर्त अंग हैं तीनों लोकों के। अब आप इसे दृश्य-संगीत कह लीजिये या श्रवण-दृश्य, बात एक ही है।

आपने लंबे समय बाद गतवर्ष में अपनी सेंटिंग की एक प्रदर्शनी पेरिस में लगाई थी। क्या भारतीय कला गैलरियों में अभी कोई उत्साह नहीं है?

आपको शायद सूचना मलत मिली है। इस साल मेरी एक प्रदर्शनी नाना शहर में हुई है। पिछले बरस उत्तर पश्चिम फ्रांस के एक शहर लोरियॉ के संग्रहालय ने मुझे आमंत्रित किया था और उस शहर में मेरी प्रदर्शनी हुई। उसी साल दक्षिणी फ्रांस के एक दूसरे संग्रहालय में मेरे चित्र दिखाए गए। ये वील फ्रांस नामक जगह है नीस शहर के बाहरी सीमा पर। पिछले दस वर्षों में यदि मेरी प्रदर्शनी बाहर हो रही है तो इसका अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता कि भारतीय कला गैलरियों में किसी तरह के उत्साह की कमी है। हां, एक-दो प्रदर्शनियों से मेरा काम हटया

गया है लेकिन मैं उन्हें हमारे यहाँ की क्षुद्र कला राजनीति की तरह ही लेता हूँ। आलोचक न होने से कला जगत में कई 'पप्पू' भी अपने को कलाकार समझते हैं, जो कुछ जगह कलाकार दिखते हैं और गैलरी उन्हें पालती-पोसती है। यही वजह है कि हमारे देश के सबसे महत्वपूर्ण कलाकार इंसान को ललित कला अकादमी में लगभग 80 वर्षों तक नहीं आने दिया गया। हम जानते हैं कि राष्ट्रीय आधुनिक कला दीर्घा क्या कर रही है। पिछले 20 वर्षों में उसने ऐसा कोई काम नहीं किया जिस पर कोई हिन्दुस्तानी गर्व कर सके कि हां, ये मेरे देश की कला का सही प्रतिनिधित्व कर रहा है। ऐसे में जब सभी सरकारी संस्थाओं पर इस तरह और इस कदर अंधकचरा लिप्य है, तब कौन है जो इस देश की कला को राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर दिखा रहा है? ये सब काम इन्हीं कला दीर्घाओं द्वारा किए जा रहे हैं। इन्हीं के उत्साह से भारतीय कला का जो भी स्वरूप है, सामने है।

यह सब है कि किसी भी वस्तु का उत्पादन के साथ फेडिजिज्म और रिफ्लेक्शन दोनों आता है। क्या अमूर्त कला उत्पादन में भी यह प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर नहीं हुआ जिसके कारण लोग जल्दी ही इससे ऊब गए और आज कलावैशेष यह कला मृत सा है?

कला को वस्तु के रूप में देखना वामपंथीय आचरण होगा। हां, वह एक वस्तु है और उसकी आचरण होगा। हां, वह एक वस्तु है और उसकी नित्यता होना है। ये रैलिजिज्म और रिफ्लेक्शन

आदि पारिभाषिक शब्द से कला को समझने का कोई द्वार नहीं खुलता। पहली बात, कोई भी कला उत्पादन नहीं है, न हो सकती है। कलाकृति के साथ उसका एक संसार भी उपयन होता है जिस पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। जैसे ही वह पूरे होती है अपने साथ अपना संसार लाती है जिसमें उसकी नुमाईश, शरीर-बिम्ब, प्रदर्शन, चुनाव और उसका नकार भी शामिल है। इसमें मेरा कोई दखल नहीं है। चौक में राजनीति से भी कोई संबंध नहीं रहता। अतः इस पर कोई उत्तेजक जवाब नहीं दे पाऊंगा।

अपने अमूर्तन में विजुअल के स्तर पर अब कोई क्रांतिक बदलाव को संभावना देख पा रहे हैं या रंगों की प्रभावोत्पादकता का सतत पुनरुत्पादन ही निवृत्ति है अमूर्तन की?

कला अपने हर प्रकटन में नवीन और क्रांतिकारी है जिसका स्वभाव ही अपने को दोहराने का है। यह अपने स्वभाव में ही प्रकृति से जुड़ी है और प्रकृति का मूल मंत्र ही 'खुद को दोहराते हुए सतत पुनरुत्पादन' में मुबितला रहती है। इसमें हर सात वर्षों में जेनेटिक बदलाव होता है जो अत्यंत सूक्ष्म होता है। कला नित ही होते हुए भी पुनरुत्पादन है। यह विरोधाभासी स्थिति ही ऐसे विशय बनाती है। यह अपने जन्म में मृत्यु लिए पैदा होती है। इसका बार-बार लौटना कभी किसी को भी प्राकृतिक रूप से विचलित नहीं कर पाया। यही इसकी खासियत है। अपने दोहराव में भी नित नई, आकर्षक और अचिंतित करने वाली शक्ति धारण किए हुए है।